निराकार ईश्वर की उपासना

ज्ञानेश्वरार्यः

एम.कॉम, दर्शनाचार्य

वानप्रस्थ साधक आश्रम

आर्य वन, रोजड़, पत्रा. सागपुर जि. साबरकांठा, गुजरात-३८३३०७

(०२७७४) २७७२१७,(०२७७०)२५७२२४, २८७४१७,

E-mail : darshanyog@gmail.com

Website : www.darshanyog.org

अनुक्रमणिका

संस्करण : प्रथम, पोष : वि. सं. २०६५ लागत : व्यय ५ रूपए

निराकार ईश्वर का ध्यान कैसे ?

ईश्वर का ध्यान करने वाले साधकों के सामने सबसे बड़ी समस्या यह आती है कि निराकार ईश्वर की उपासना कैसे की जाए ? मन को टिकाने के लिए कोई न कोई तो आधार होना ही चाहिए, चाहे वह आधार कोई मूर्ति हो, कोई प्रकाश हो, कोई दीपक हो, कोई अगरबत्ती हो, कोई लौ हो, कोई बिन्दु हो, कोई चिह्न हो। कोई न कोई वस्तु तो होनी चाहिए। बिना किसी आधार के मन को कैसे टिका पायेंगे ? इस विषय में ध्यान देने की बात है कि मन को टिकाने के लिए आश्रय की आवश्यकता तो है, हम भी कहते हैं कि आश्रय तो लेना ही चाहिए किन्तु वह आश्रय ईश्वर का ही होना चाहिए। हम ध्यान तो करना चाहे ईश्वर का किन्तु आश्रय लें प्रकृति का, तो ये तो गड़बड़ हो जायेगी इसलिए आश्रय, वह लेना है जो ईश्वर का ही गुण-कर्म-स्वभाव हो।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, भार, लंबाई, चौड़ाई गुण प्रकृति के हैं और प्रकृति से बने पदार्थों में भी आते हैं, किन्तु ये गुण ईश्वर में नहीं है। इनका आश्रय हम लोग लेंगे, तो यह प्रकृति का आश्रय हो गया। ईश्वर का आश्रय कैसे कहलायेगा? यहाँ प्रकृति के आश्रय को लेकर कहा जा रहा है कि ईश्वर का आश्रय ले रहे हैं। यह मिथ्या धारणा हो जाएगी। ईश्वर का ध्यान ईश्वर का ही आश्रय लेना है। ईश्वर का आश्रय लेना अर्थात् ईश्वर के गुणों का आश्रय लेना। ईश्वर का गुण आनन्द है, ईश्वर का गुण ज्ञान है,

ईश्वर का गुण बल है, ईश्वर का गुण दया है, ईश्वर का गुण न्याय है इत्यादि। तो हमें ईश्वर की उपासना करने के लिए और अपने मन को टिकाने के लिए ईश्वर के गुणों का ही आश्रय लेना चाहिए। उन गुणों को लेकर के ही मन को टिका सकते हैं, और ध्यान कर सकते हैं।

निराकार का आश्रय

यदि हम किसी रूप का आश्रय ले करके ईश्वर का ध्यान कर रहे हैं तो वह ध्यान होगा ही नहीं, वहाँ तो वृत्ति बन रही है, क्योंकि रूप नेत्र का विषय है और हम नेत्र से रूप को देखकर वृत्ति बनाये हुए हैं, वृत्ति निरोध कैसे हो पायेगा? ईश्वर का ध्यान करने के लिए वृत्ति-निरोध कहा गया है। अर्थात् मन के माध्यम से, इन्द्रियों के माध्यम से, जो प्राकृतिक विषय हैं, ५ भूत हैं - शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध उनका हम ग्रहण न करें। यदि ध्यान काल में रूप की अनुभूति कर रहे हैं, तो वृत्ति-निरोध होगा ही नहीं, वहाँ तो वृत्ति चल रही है। उस वृत्ति को रोक करके ही ईश्वर का ध्यान हो सकता है, इसलिए रूप के आश्रय का निषेध है। इसी प्रकार यदि हम शब्द का आश्रय लेकर के ईश्वर का ध्यान करते हैं, तो उसका भी निषेध है। क्योंकि वह भी इन्द्रिय का विषय है। यह आवश्यक है कि हम उपासना काल में वृत्तियों का निरोध करें। हम ध्यान करने जा रहे हैं ईश्वर का, किन्तु प्रकृति का आश्रय ले कर प्रकृति का ध्यान करने लग जायें, यह उचित नहीं है अतः उपासना काल में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध गुणवाले प्राकृतिक पदार्थों का

आश्रय नहीं लेना चाहिए।

साकार ईश्वर का मिथ्या ध्यान

जो गुण ईश्वर में हैं ही नहीं, उन गुणों को ईश्वर में मान करके ईश्वर का ध्यान करते हैं तो हमारा मिथ्या ध्यान हो जाता है। उदाहरण के लिए जब ईश्वर के अन्दर 'रूप' गुण है ही नहीं और हम अपनी कल्पना से ईश्वर में लाल, नीला, पीला, सफेद या कोई और प्रकार का रूप गुण है ऐसी कल्पना करके ईश्वर का ध्यान करते हैं तो यह ध्यान नहीं कहलाएगा, यह तो अध्यान हो गया, मिथ्याध्यान हो गया। इसलिए जो व्यक्ति किसी रूप का आश्रय ले करके ध्यान करता है कि मैं ईश्वर को प्राप्त करूँगा, ईश्वर का ध्यान करूँगा, यह तो ध्यान नहीं होगा। कोई बिन्दु रूप में, कोई सूर्य के रूप में, कोई तारे के रूप में, कोई अगरबत्ती की लौ के रूप में, मोमबत्ती की लौ के रूप में, कोई ज्योति के रूप में, कोई प्रकाश के रूप में आँखे खोलके भी और कुछ लोग, आँखे बन्द करके भी अपने मन के अंदर इस प्रकार की कल्पना करके ईश्वर का ध्यान करते हैं, यह आश्रय ठीक नहीं है। यह एक मिथ्या मान्यता है कि ईश्वर के अन्दर कोई ज्योति है या कोई प्रकाश है। इसका कारण यह है कि लोगों की धारणा बनी हुई है या कहीं सुन रखा है, पढ़ रखा है कि ईश्वर प्रकाशवान् है और जब उसकी अनुभूति होती है तो महान् प्रकाश होता है। वेद आदि आर्ष ग्रंथों में ईश्वर के विषय में आए हुए प्रकाश शब्द का अर्थ भौतिक प्रकाश नहीं लेना चाहिए। प्रकाश का अर्थ ज्ञान

लेना चाहिए। जब ईश्वर की अनुभूति होती है तो व्यक्ति महान् ज्ञानी बनता है। ऐसा मानना चाहिए। प्रकाश का अर्थ वहाँ ज्ञान है। ईश्वर प्रकाशवान् है इसका अर्थ महान् ज्ञानवान् है न कि भौतिक प्रकाशवाला है। इसलिए ईश्वर के अन्दर प्रकाश की, ज्योति की, सूर्य की, चन्द्रमा की, दीपक की, लौ की आदि की कल्पना करके उसका ध्यान नहीं करना चाहिए। यह ध्यान नहीं है, यह तो अध्यान ही कहलाएगा।

ईश्वर के गुणों से ईश्वर का ध्यान

प्रश्न आता है कि जब ईश्वर में रूप आदि गुण नहीं हैं तो उसका ध्यान कैसे किया जाए? इसका सीधा उत्तर यह है कि - हाँ, निराकार का भी ध्यान होता है। हम सभी निराकार वस्तुओं का भी ध्यान करते हैं। उदाहरण के रूप में - क्या वायु किसी को दिखाई देती है ? वायु का कोई रूप नहीं, उसका कोई लाल, नीला, पीला रंग नहीं है। वायु निराकार है लेकिन हम वायु का ध्यान करते हैं। वायु की अनुभूति करते हैं। प्रश्न आता है कि किसके माध्यम से वायु की अनुभूति करते हैं? उत्तर है कि वायु के गुणों के माध्यम से अनुभूति करते हैं जैसे कि वायु ठण्डी चल रही है तो हम अनुभूति करेंगे कि वायु ठण्डी है। वायु गरम है तो गर्मी के माध्यम से हम वायु की अनुभूति कर लेते हैं। ठीक ऐसे ही ईश्वर में रूप आदि गुण नहीं हैं परन्तु उसमें अनन्त गुण हैं यथा बल गुण है, दया गुण है, न्याय गुण है इत्यादि। इन गुणों के माध्यम से हम ईश्वर का ध्यान कर सकते हैं, करना चाहिए। जैसे कि हे ईश्वर! आप न्यायकारी

हैं, दयालु हैं, सृष्टि के रचयिता हैं, सृष्टि के रक्षक हैं, पालक हैं, पोषक हैं। हे ईश्वर ! आप महान् ज्ञानी हैं, महान् दयालु हैं, कर्म फल दाता हैं इत्यादि।

निराकार ईश्वर के ध्यान का अन्य उदाहरण

दूसरा उदाहरण शब्द का है। हम शब्दों को स्वयं बोलते हैं, दूसरों के शब्दों को सुनते हैं। शब्दों से ज्ञान हो जाता है। शब्दों का कोई रूप नहीं है। शब्द कोई लाल, नीला, पीला नहीं होता। शब्द गुण है, उस गुण के माध्यम से हम कौन व्यक्ति बोल रहा है उसका पता लगा सकते हैं। टेलिफोन में हम बात करते हैं। हमारे परिचित व्यक्ति द्वारा हेलो कहते ही हमें अनुभूति हो जाती है कि वह बोल रहा है। इसी प्रकार दूसरा उदाहरण ले लीजिए। हमने लता मंगेश्कर को, उनका नाम लेकर के उनके द्वारा गाये गए गानों को सुना है। कहीं से लता का गाना आ रहा है। वहाँ बताया न जाने

प र

भी कि लता गा रही है। उनके स्वर को सुन करके उनका पता लगा लेते हैं कि लता ही गा रही है। इसी प्रकार किशोर कुमार गा रहा है। या मोहम्मद रफी गा रहा है या अनुराधा गा रही है। हमने केवल शब्दों को सुना है रूप को नहीं देखा है जैसे हम शब्द गुण के माध्यम से गाने वाले का पता लगा लेते हैं ऐसे ही आनन्द, ज्ञान, बल, दया, पुरुषार्थ, न्याय आदि जो ईश्वर में गुण हैं उन गुणों के माध्यम से उस ईश्वर का पता लगा सकते हैं उसकी अनुभूति कर सकते हैं, यह प्रक्रिया है।

निराकार वस्तुओं का भी ध्यान संभव है

ईश्वर की उपासना करने वाले बहुत अधिक लोगों के मन में यह शंका बनी रहती है कि बिना रंग, रूप, आकार, लंबाई, चौड़ाई वाली वस्तु का ध्यान हो ही नहीं सकता। कोई न कोई रूप होना ही चाहिए। बिना आधार के कैसे मन को टिका सकते हैं। कम से कम मन को टिकाने के लिए कोई तो आधार होना ही चाहिए और वह आधार आकार वाली वस्तु ही हो सकती है। इसलिए वे किसी जड़ वस्तु का आश्रय लेते हैं लेकिन यह मान्यता ठीक नहीं हो सकती। बिना रंग, रूप, आकार वाली वस्तु का भी ध्यान होता है। उदाहरण के लिए सुख का कोई रंग, रूप, आकार नहीं होता फिर भी प्रत्येक दिन लाखों, करोड़ों व्यक्ति सुख का ध्यान करते हैं, सुख की कामना करते हैं। इसी प्रकार दुःख का भी कोई हाथ पैर नहीं होता है परन्तु सदा सभी प्राणी दुःख का ध्यान करते हैं और मन में यह भावना बनाते हैं कि दुःख न आ जाये। इसी प्रकार गुरुत्वाकर्षण शक्ति (Gravitational Force) विद्युत तरंगें (Electro Magnatic Waves), अल्फा, बीटा, गामा तथा एक्स किरणों (Alpha, Betta, Gamaa, X-Rays) आदि भी निराकार हैं इन का कोई रूप, रंग, आकार नहीं है फिर भी इनका हम ध्यान चिंतन करते हैं। इसलिए यह आवश्यक नहीं है कि रूपवान् का ही ध्यान होता है, रूप रहित का नहीं होता है। वास्तविक सिद्धान्त यह है कि जिस वस्तु में जो गुण होते हैं उन्हीं के

माध्यम से उस वस्तु का ध्यान किया जाता है,अन्यथा नहीं। जब ईश्वर में रंग, रूप, आकार, लंबाई, चौड़ाई, भार, उसके हाथ पाँव आदि हैं ही नहीं तो फिर उसमें रंग, रूप, आकार, हाथ, पाँव आदि को मानकर उसका ध्यान करना मिथ्या है और व्यर्थ है। ऐसे ध्यान से ईश्वर की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती हैं क्योंकि ये गुण ईश्वर में ही नहीं।

निराकार ईश्वर की उपासना के प्रमाण

स पर्यगात् शुक्रम् अकायम्...(यजुर्वेद ४०/८) इस मंत्र में आया है कि ईश्वर कण-कण में व्यापक है और
श ा र ी र
धारण नहीं करता है। **न तस्य प्रतिमा अस्ति...**(यजुर्वेद ३२/३) इस मंत्र में स्पष्ट आया है कि सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी ईश्वर की कोई मूर्ति नहीं बन सकती है। इसी प्रकार वेदान्त दर्शन के चतुर्थ अध्याय के प्रथम पाद के चौथे सूत्र में ऋषि ने कहा है-**'न प्रतीके न हि सः'** अर्थात् जड़ पदार्थों में, मूर्ति आदि में परमात्मा बुद्धि कल्पित नहीं करनी चाहिए। क्योंकि वह जड़ पदार्थ परमात्मा नहीं है। यद्यपि उस पदार्थ में ईश्वर है लेकिन वह जड़ पदार्थ ईश्वर नहीं है इसलिए उस जड़ पदार्थ को ईश्वर मानकरके उसकी उपासना नहीं करनी चाहिए। इसी प्रकार सांख्य दर्शन में भी एक सूत्र आया है **'ध्यानं निर्विषयं मनः'** (६/२५)। इसमें भी ऋषि ने कहा है कि ध्यान के काल में मन किसी लौकिक विषय वाला नहीं होना चाहिए। अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध जो इन्द्रियों के विषय हैं उनका चिंतन नहीं करना

चाहिए। जब हम किसी जड़ पदार्थ का, उसके रंग, रूप, आकार का ध्यान करते हैं तो वह वस्तु ध्यान का विषय बन जाता है। इसलिए यहाँ पर ऋषियों ने ध्यान के विषय में स्पष्ट निर्देश किया है कि जड़ पदार्थों को ले करके ईश्वर का ध्यान नहीं करना चाहिए। उपर्युक्त वेद, दर्शन आदि ग्रंथों में आए मंत्रों और सूत्रों से यह सिद्ध होता है कि ईश्वर निराकार है। ईश्वर में जो गुण हैं उन्हीं गुणों के माध्यम से ईश्वर का ध्यान किया जाना चाहिए। इसी ध्यान से ईश्वर का साक्षात्कार होता है। और ईश्वर के वे गुण हमारे में आते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य विधि से अन्य किसी आलम्बन को मन में रख करके ध्यान करते हैं तो वह ध्यान नहीं होता है। वह अध्यान ही होता है। ऐसा समझना चाहिए।

निराकार ईश्वर के ध्यान का उदाहरण–

कोई हमारा परिचित मित्र रात्रि के समय हमारे घर पर आता है। कुशल क्षेम पूछने के पश्चात् जब मुख्य प्रयोजन की बात चलती है तो वह हमें बताता है कि मैं आपके ५० हजार रूपये जो उधार लिए थे वह लौटाने के लिए आया हूँ। ऐसा कह करके ज्यों हीं वह पीछे की जेब में हाथ डाल करके पैसे का पैकेट निकालने लगता है तो उसको वह नहीं मिलता है और घबराकर कहता है कि मेरा पर्स कहाँ चला गया? हम उससे पूछते हैं क्या बात है ? कौन सा पर्स ? तो वह उत्तर देता है मैं आपको ५० हजार रूपये लौटाने के लिए आया था। वे रूपये इस पर्स में रखे थे। पता नहीं कहाँ

गिर गया ? हम पूछते हैं, अंतिम बार आपने कहाँ देखा? तो वह उत्तर देता है जब मैंने बस से उतरकर रिक्शे में चढ़ते समय पेंट की जेब के पीछे हाथ डालकर पैसे निकाले तब वह पर्स था। कुछ रूपये रिक्शे वाले को देने के लिए निकाल कर पर्स जेब में रख दिया। उस समय मेरी जेब में पर्स था और रूपये भी थे। हमने पूछा कि पर्स का रंग, आकार कैसा है? तो उसने बताया कि लाल रंग का पर्स है, लगभग ८ इंच लंबा है और ३ इंच चौड़ा है। उसमें ५-५ सौ के १०० नोट गड्डी बनाकर रखे हुए थे। तो हमने कहा कि चलो जहाँ आप बस से उतरे थे और रिक्शे पर चढ़े थे उस स्थान पर चलना चाहिए वह स्थान आधा किलोमीटर दूर था। रात का समय, सड़क सुनसान थी।

हाथ में टार्च ले कर पर्स को ढूंढ़ने के लिए हम निकले यद्यपि हमने पर्स नहीं देखा था फिर भी जैसा हमारे परिचित मित्र ने पर्स के विषय में वर्णन किया उसी वर्णन के आधार पर हम अंधेरे में टार्च जलाकर पर्स को ढूंढने निकल पड़े। हमारे मन में केवल शब्द ज्ञान था कि लाल रंग का पर्स है, ८ इंच लंबा है, ३ इंच चौड़ा है जिसमें ५-५सौ के १०० नोट भरे हुए हैं। मन में और कोई विचार नहीं है केवल मात्र मित्र के बताए हुए पर्स के शब्द ज्ञान के आधार पर हम पर्स को खोज कर रहे थे और सड़क पर बढ़ते जा रहे थे यह उस अप्रत्यक्ष पर्स का ध्यान था। यही स्थिति ईश्वर के ध्यान की होती है। वेद मंत्र में आए हुए ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव को मन में दोहराते रहना और उसकी प्राप्ति की कामना करते रहना ध्यान कहलाता है।

निराकार ईश्वर की उपासना के ३ विभाग होते हैं-

१. ईश्वर की स्तुति

२. ईश्वर से प्रार्थना

३. ईश्वर की उपासना

सर्वप्रथम वेद-मंत्रों के माध्यम से ईश्वर की स्तुति की जाती है। स्तुति का तात्पर्य है किसी वस्तु के स्वरूप को अर्थात् गुण-कर्म-स्वभाव को अच्छी प्रकार से जानना जैसे कि ईश्वर आनन्दस्वरूप है, ईश्वर न्यायकारी है, ईश्वर दयालु है, ईश्वर महान् ज्ञानवान है, ईश्वर महान बलवान है इत्यादि।

दूसरा विभाग आता है प्रार्थना का । ईश्वर के जिन गुणों को हमने वेद-मंत्रों के माध्यम से जाना है उन गुणों को प्राप्त करने की इच्छा प्रकट करना प्रार्थना कहलाती है। जैसे कि हे ईश्वर ! आप आनन्दस्वरूप हैं । मुझे भी आनन्दित बनाइए। आप महान ज्ञानी हैं मुझे भी ज्ञानी बनाइए। आप महान दयालु हैं मुझे भी दयालु बनाइए। आप न्यायकारी हैं मुझे भी न्यायकारी बनाइए इत्यादि।

ध्यान का तीसरा विभाग है उपासना। ईश्वर के जिन गुणों को जान करके हमने उनकी प्राप्ति की प्रार्थना की थी उन गुणों को धारण कर लेना अथवा धारण करने का सतत् प्रयास करते रहना उपासना कहलाती है।

स्तुति, प्रार्थना के बाद उपासना का उदाहरण-

हे ईश्वर ! आप आनन्दस्वरूप हैं ऐसा मानना ईश्वर की स्तुति है। हे ईश्वर ! मैं भी आनन्दित हो जाऊँ ऐसी इच्छा

व्यक्त करना प्रार्थना है। और मैं आनन्दित बन गया हूँ अथवा मैं दिनभर आनन्दित रहूँगा, दुःखी नहीं होउंगा। इस प्रकार का प्रयास करना उपासना है।

उपासक के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण बातें :-

"मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य ईश्वर को प्राप्त करना तथा अन्यों को प्राप्त करवाना है।" यह बात योग जिज्ञासु को अपने मन में निश्चय से बिठा लेनी चाहिये। जैसा कि वेदादि सत्य शास्त्रों में लिखा है –

१) **वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्...** (यजु. ३१-१८)

२) **इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।** (केन. उप. २-५)

३. **आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।** (बृह. २-४-५)

योगाभ्यासी को यम नियमों का पालन मन, वचन और शरीर से श्रद्धापूर्वक करना चाहिए।

साधक स्वयं अनुशासन में रहे और अनुशासन बनाये रखने में सहयोग देवे।

योगाभ्यासी को महर्षि व्यास जी के अनुसार यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये की "**नाऽतपस्विनो योगः सिध्यति**" अर्थात् बिना तपस्या के योग सिद्धि नहीं होती।

योग साधक को वेद, दर्शन, उपनिषद्, स्मृति आदि ग्रन्थों के शब्द-प्रमाण पर पूर्ण विश्वास रखकर चलना चाहिये। इन आप्त वचनों पर संशय न करे।

योगाभ्यासी को चाहिए कि व्यवहार में वह इतना सावधान रहे कि किसी भी प्रकार की त्रुटि (दोष) होने ही न दे, यदि कभी हो भी

जावे तो उसको वह शीघ्र स्वीकार करे, उसका प्रायश्चित्त करे (=दण्ड लेवे) और भविष्य में न होवे ऐसा प्रयास करे।

योगाभ्यासी वाणी का प्रयोग बहुत ही सावधानी से करे, अर्थात् आवश्यक होने पर ही बोले, सत्य ही बोले, सत्य भी मधुर भाषा में बोले और वह भी हितकारी होना चाहिये।

योगाभ्यासी को अपने सम्मान की इच्छा कदापि नहीं करनी चाहिये और अपमान होने पर उसको सहन करना चाहिये, (दुःखी नहीं होना चाहिये)।

योग साधक को अपना प्रत्येक कार्य ईश्वर की प्राप्ति (साक्षात्कार) के लिये करना चाहिये, न कि सांसारिक सुख और सुख के साधनों की प्राप्ति के लिये।

योगाभ्यासी ब्रह्मविद्या (=योगविद्या) को श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार की पद्धति से प्राप्त करने हेतु पूर्ण प्रयास करे।

साधक को चाहिये कि वह योग सम्बन्धी विषयों का ही अध्ययन करे, उन पढ़े हुए विषयों पर ही चर्चा, विचारादि करे। अन्य सांसारिक विषयों से सम्बन्धित चर्चा न करे।

योगाभ्यासी को चाहिये कि वह ब्रह्म-विद्या के महत्त्व को समझे और इसकी प्राप्ति के लिए स्वयं को पात्र बनाये, जैसे कि जनक आदि राजा थे। राजा जनक ने याज्ञवल्क्य से निम्न बात कही –

"सोऽहं भगवते विदेहान् ददामि माञ्चापि सह दास्यायेति" (बृ. उप. ४, ४-२३)

"हे याज्ञवल्क्य! मैं आपको अपना सम्पूर्ण विदेह राज्य भेंट करता हूँ और स्वयं को भी आपके आदेश का पालन करने के लिये समर्पित करता हूँ।"

योगाभ्यासी को चाहिये कि स्वयं कष्ट उठा कर (अपनी सुख सुविधाओं का परित्याग करके) भी दूसरों को सुख पहुँचाने का प्रयास करे।

योगाभ्यासी दूसरों के गुणों को ही देखे, दोषों को नहीं, और अपने दोषों को देखे, गुणों को नहीं।

भौतिक वस्तुओं (भोजन, वस्त्र, मकान, यानादि) का प्रयोग शरीर की रक्षा के लिये ही करे न कि सुख-प्राप्ति के लिये।

योग साधक को चाहिये कि आवश्यकता न होने पर भोजन न करे तथा आवश्यकता की पूर्ति हो जाने पर भोजनादि का अधिक प्रयोग न करे अर्थात अपनी रसना आदि इन्द्रियों पर संयम रखे।

ईश्वर की शीघ्र प्राप्ति हेतु योगाभ्यासी को चाहिये कि हेय, हेय-हेतु, हान, हानोपाय (दुःख, दुःख का कारण, सुख, सुख का उपाय) इन पदार्थों को अच्छी प्रकार समझने का प्रयास करे।

योगाभ्यासी के मन में योग सम्बन्धी विभिन्न शंकाओं के उपस्थित होने पर, किसी योगनिष्ठ गुरु के पास जाकर, उनसे आज्ञा लेकर, प्रेमपूर्वक, जिज्ञासा भाव से शंकाओं का समाधान करना चाहिए, किन्तु किसी के साथ विवादादि नहीं करना चाहिए।

ध्यान की सज्जा

ईश्वर की उपासना करने वाले "योगाभ्यासी" को प्रातःकाल सूर्योदय से कम से कम दो घण्टे पूर्व तो अवश्य ही उठ जाना चाहिए। साधक मन में 'ओ३म्' का स्मरण करता हुआ बिस्तर से उठ जाये। हाथ-मुंह धोकर उषःपान करे (= पानी पीये)। पानी पीकर "**प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे.....**" इत्यादि प्रातःकालीन पाँच वेदमन्त्रों का अर्थ सहित पाठ करे।

पुनः शौच, दातुन, व्यायाम तथा स्नान करे। तत्पश्चात् किसी

शान्त-एकान्त-शुद्ध स्थान पर स्वच्छ-मोटे आसन पर ध्यान के लिए बैठे और ध्यानात्मक आसनों (पद्मासन आदि) में से, कोई एक आसन सरलता पूर्वक (=बिना कष्ट के) लगाये। समस्त शारीरिक चेष्टाओं को बन्द करके स्थिरता पूर्वक सीधा होकर बैठे अर्थात् सिर, गर्दन तथा कमर, तीनों सीधे हों, यह ध्यान रखे।

आसन पर बैठने के पश्चात् "**मानव जीवन का लक्ष्य**" क्या है ? अथवा "मुझे यह मनुष्य शरीर क्यों मिला है?" इस विषय पर इस प्रकार से विचार करे- 'समस्त सांसारिक दुःखों से छूटकर ईश्वर की प्राप्ति करना-करवाना ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है' वेदों तथा ऋषि-कृत ग्रन्थों में वर्णित इस लक्ष्य को योगाभ्यासी अपने मन में दोहरायें और इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अत्यन्त पुरुषार्थ से योगाभ्यास करे।

लक्ष्य पर विचार करके, यह निश्चय करे कि इस आसन पर मैं ईश्वर का साक्षात्कार करने के लिए बैठा हूँ। अब एक घण्टे तक मैं ईश्वर की ही स्तुति-प्रार्थना-उपासना करुँगा, अन्य किसी सांसारिक विषय का ध्यान नहीं करुँगा।

योगाभ्यासी साधक के लिए यह अति आवश्यक है कि उपासना काल में वह अपने **समस्त सांसारिक सम्बन्धों को भुला दे**, जिनका सम्बन्ध शरीर के कारण है अर्थात् इस समय पति-पत्नी, माता-पिता, पुत्र-पुत्री तथा मित्र-सम्बन्धी आदि समस्त प्राणियों का और भूमि-भवन, धन-सम्पत्ति आदि समस्त जड़ वस्तुओं का भी स्मरण न करे।

इसके अतिरिक्त दूसरा कार्य यह भी आवश्यक है कि '**शरीर को आत्मा मानने विषयक**' अपने मिथ्याज्ञान को दूर कर दे, जैसे कि अपने को 'मैं पुरुष हूँ', 'मैं स्त्री हूँ', 'मैं जवान हूँ', 'मैं बूढ़ा हूँ', 'मैं काला हूँ', 'मैं गोरा हूँ', 'मै निर्बल हूँ', 'मैं बलवान् हूँ', 'मैं सुंदर हूँ', 'मैं कुरूप हूँ', 'मैं लम्बा हूँ', 'मैं नाटा हूँ', इत्यादि गुणोंवाला मानना। क्योंकि ये सब नित्य आत्मा के गुण न होकर अनित्य, विकारी, परिवर्तनशील जड़ शरीर के

गुण हैं।

सांसारिक एवं शारीरिक सम्बन्धों को भुलाकर साधक अपनी **वृत्ति को अन्तर्मुखी** बनाये क्योंकि ऐसा किये बिना वह आत्मा-परमात्मा का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता।

इसके पश्चात् योगाभ्यासी **'स्व-स्वामीसम्बन्ध'** को समझ कर हटाने का प्रयास करे अर्थात् यह निश्चय पूर्वक मन में बिठा ले कि मेरे पास यह शरीर तथा शरीर से सम्बन्धित जितने भी विद्या, धन, बल, प्रतिष्ठा, योग्यता तथा अन्य गुण विद्यमान हैं, इन सब का आदिमूल परमेश्वर ही है, मैं नहीं हूँ। क्योंकि मुझमें न तो इतना ज्ञान है और न इतना बल कि मैं इन शरीरादि समस्त प्राकृतिक पदार्थों को बना सकूँ और इन की रक्षा कर सकूँ। ईश्वर ने महती दया करके, ये सब पदार्थ, मुझे भोग तथा अपवर्ग की प्राप्ति करने के लिए साधन के रूप में दिये हैं। मैं तो इन सब साधनों का प्रयोक्ता मात्र हूँ, स्वामी तो वास्तव में ईश्वर ही है।

स्वस्वामी - सम्बन्ध को ज्ञानपूर्वक नष्ट करने के पश्चात् योगाभ्यासी **'व्याप्य-व्यापक'** सम्बन्ध को समझे। यह सारा संसार व्याप्य है, और ईश्वर व्यापक है अर्थात् ऐसा कोई कण नहीं है जिसमें ईश्वर विद्यमान न हो, जैसे अग्नि की भट्ठी में लोहे के गोले को रख देने पर, गोले में अग्नि सर्वत्र व्यापक हो जाती है, इसी प्रकार से ईश्वर संसार की प्रत्येक वस्तु में समाया हुआ है। इसी व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध के माध्यम से, ईश्वर से साथ अपनी निकटता को और अधिक अनुभव करने के लिए ऐसा भी समझना चाहिए कि मैं ईश्वर में डूबा हुआ हूँ, ईश्वर में ही बैठता हूँ, ईश्वर में ही खाता हूँ, ईश्वर में ही पीता हूँ, अनादिकाल से मैं ईश्वर में ही रहता आया हूँ और अनन्त काल तक ईश्वर में ही रहूँगा। मैं ईश्वर से कभी भी अलग नहीं हो सकता।

व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध की स्थिति बना लेने के पश्चात् योगाभ्यासी **'मन व इन्द्रियों के जड़त्व'** को समझने का प्रयास करे। इस विषय पर

निम्न प्रकार से निर्णय करे – "मेरा मन एक यन्त्र के समान जड़ वस्तु है, यह अपने आप किसी विषय का चिन्तन नहीं करता। मैं चेतन जीवात्मा जिस किसी बाह्य या आन्तरिक विषय को जानने की इच्छा करके मन को प्रेरित करता हूँ, उसी विषय का ज्ञान मेरा मन मुझे करा देता है। जैसे फोटोग्राफर की इच्छा के बिना कैमरे में अपने आप चित्र नहीं उतरते, वैसे ही मेरी इच्छा तथा प्रेरणा के बिना मेरा मन भी किसी वस्तु का ज्ञान मुझे नहीं कराता। इसलिए मैं इस जड़ मन को, आत्मिकज्ञान से अपने नियंत्रण में रखता हुआ एक घण्टे तक ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी विषय में नहीं लगाऊँगा।"

ऊपर लिखित सज्जा करने के पश्चात् अब योगाभ्यासी ईश्वर की शीघ्र तथा सरलता से अनुभूति करने के लिए '**ईश्वर प्रणिधान**' की स्थिति का सम्पादन करे। "सर्वव्यापक-सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान्-न्यायकारी-निराकार ईश्वर मेरी आत्मा में स्थित है। वह मेरे प्रत्येक शारीरिक, वाचनिक तथा मानसिक कर्मों को प्रतिक्षण देख, सुन, जान रहा है। मैं कोई भी कर्म उस से छिपकर नहीं कर सकता।"

जैसे दूरदर्शन प्रसारण कक्ष (T.V. Telecasting Centre) में बैठा उद्घोषक (Announcer) यह जानता है कि 'चाहे मुझे दिखाई न दे, किन्तु लाखों लोगों की आँखे तथा कान मुझे देख व सुन रहे हैं' ऐसा विचार कर वह कोई भी अनुचित क्रिया नहीं करता तथा अभद्र वाक्य नहीं बोलता। वैसे ही योगाभ्यासी अपने मन में माने कि 'ईश्वर मेरे पास माता-पिता के समान उपस्थित है और अत्यन्त प्रेमपूर्वक, पवित्र हृदय से की गई, मेरी स्तुति-प्रार्थना को सुन रहा है। मेरी प्रार्थना सुनकर वह परमदयामय, कृपा करके, अवश्य ही मेरी मनोकामना पूरी करेगा, इसमें किञ्चित् मात्र भी संशय नहीं है।'

साधक को सन्ध्योपासना करने से पूर्व उपर्युक्त प्रकार से सज्जा

अवश्य ही कर लेनी चाहिए, जिससे कि उसे उपासना में सफलता मिल सके और ईश्वर से परम आनन्द और ज्ञान की प्राप्ति कर सके।

उपासना का स्थान

प्रायः देखने, सुनने में आता है और लोगों की ऐसी मान्यताएँ भी बनी हुई हैं कि ईश्वर की पूजा, भक्ति, ध्यान, उपासना मंदिर में होती है, किसी पहाड़ विशेष में ही होती है, नदी के किनारे होती है, जंगल में होती है। इन्हीं जगहों पर उपासना हो सकती है, सामान्य स्थानों में नहीं हो सकती, यह मान्यता ठीक नहीं है। ईश्वर की उपासना के लिए स्थान का इतना महत्त्व नहीं है, जितना कि मन की एकाग्रता, ईश्वर के प्रति समर्पण, प्रेम, श्रद्धा, विश्वास, निष्ठा, रूचि आदि का है। हाँ, इतनी बात तो अवश्य है, स्थान शान्त होगा, एकान्त होगा, रमणीय होगा, स्वच्छ होगा, कोलाहल से रहित होगा तो वहाँ पर अपेक्षाकृत बाधा कम होने के कारण ध्यान अच्छा लगेगा।

लेकिन यदि मन के ऊपर नियन्त्रण हो, ईश्वर के प्रति रूचि हो, प्रेम हो और प्राणायाम के माध्यम से विधिवत् मन को रोक करके मन्त्रों के माध्यम से उसका ध्यान किया जाए तो ध्यान कहीं पर भी लग सकता है। घर से बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है। घर में ध्यान लग सकता है, किसी कमरे में लग सकता है। किसी बिस्तर पर लग सकता है, कुर्सी पर भी लग सकता है।

इसी प्रकार दिशा की बात भी आती है कि कौन सी

दिशा में बैठ करके ईश्वर का ध्यान करें। दिशा की भी कोई विशेष अपेक्षा नहीं है। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण किसी भी दिशा में ईश्वर का ध्यान कर सकते हैं। जिधर से शुद्ध वायु आती हो, सूर्य उदय होता हुआ, अस्त होता हुआ दिखाई देता हो, जिधर पानी हो, समुद्र हो, नदी हो, तालाब हो, झरना हो तो ऐसी परिस्थितियों का मन की प्रसन्नता, एकाग्रता पर प्रभाव पड़ता है। लेकिन यह सब बातें भी गौण है। यदि ईश्वर में ध्यान करने की रुचि है, प्रेम है तो इसका कोई महत्त्व नहीं है क्योंकि ध्यान आँख बंद करके होता है और आँख बन्द करने के उपरान्त हम कहाँ बैठे हैं, किस दिशा में बैठे हैं इसकी विस्मृति हो जाती है बल्कि इनको भूलाना पड़ता है। इसलिए दिशा, स्थान आदि का भी इतना महत्त्व नहीं है।

उपासना के लिए भौतिक साधन और सामग्री

इसी प्रकार ईश्वर की उपासना के विषय में एक मान्यता यह भी बनी हुई है कि ईश्वर की प्रार्थना करने के लिए धूप, दीप, पुष्प, अगरबत्ती आदि चाहिए, आसपास में पानी होना चाहिए, फूलवारी होनी चाहिए तभी ईश्वर का ध यान हो सकता है। परन्तु वास्तविकता यह है कि ईश्वर की उपासना के लिए किसी भी बाह्य भौतिक वस्तु की आवश्यकता नहीं है। जैसे कि आजकल हम देखते हैं ईश्वरभक्त लोग ईश्वर की उपासना करने के लिए पत्र, पुष्प, नैवेद्य, प्रसाद, अगरबत्ती, धूप, दीपक, मोमबत्ती आदि-आदि अनेक वस्तुओं को अर्पित करके ईश्वर की उपासना करते हैं। इसकी कोई

आवश्यकता नहीं है।

ईश्वर को किसी भी वस्तु की अपेक्षा नहीं है। वह स्वयं प्रकाशस्वरूप है, वह हमारा दाता है, उसको हम क्या देंगे? इसको न जानने से लोगों की यह मान्यता बनी हुई है कि हम ईश्वर के पास में कुछ ले जायेंगे तभी ईश्वर प्रसन्न होगा। ईश्वर पवित्र है,उसके सामने अगरबत्ती ले जाने की क्या आवश्यकता है? अगरबत्ती से तो प्रदूषित वातावरण दूर होता है। हाँ, ये बात ठीक है कि जहाँ अगरबत्ती जलाते है, वहाँ का वातावरण कुछ शुद्ध हो जाता है, सुगन्धित हो जाता है, उसका मन पर कुछ प्रभाव पड़ता है। लेकिन यह अनिवार्य नहीं है। इसी प्रकार दीपक जलाने से अन्धेरा दूर होता है और वहाँ प्रकाश तो हाता है, किन्तु इसकी भी आवश्यकता नहीं। देखा जाय तो ये प्रकाश, अगरबत्ती, पुष्पादि जो हैं वे वृत्तियों को निरोध करने में बाधक हैं बल्कि वृत्तियों को उत्पन्न करते हैं।

यदि अगरबत्तियों की सुगन्ध आयेगी तो हमारी नासिका उसको ग्रहण करेगी और उसका ध्यान होता जायेगा। इसी प्रकार दीपक को देखेंगे तो हमारी दृष्टि बदल जायेगी। आँखो के माध्यम से ईश्वर का ध्यान करने में बाधा उत्पन्न होगी। ईश्वर की उपासना के लिए कहा गया है "चित्तवृत्तिनिरोध ाः" अर्थात् मन की जो वृत्तियाँ हैं जैसे आँख से देखना, कान से सुनना, नासिका से सूँघना, मुख से खाना, त्वचा से स्पर्श करना। यदि उपासना काल में इन इन्द्रियों के माध्यम से जब विषयों का सेवन हो रहा होता है तो ये बाधा उत्पन्न करते हैं इसलिए इनको रोकना पड़ता है। अतः भौतिक वस्तु

तथा भौतिक वस्तुओं के गुणों का (उपासना काल में) निषेध किया गया है। इससे यह बात सामने आई कि ईश्वर की उपासना के लिए जो व्यक्ति कुछ फूल, फल, भेंट, पूजा सामग्री, अगरबत्ती आदि वस्तुओं को ले करके अर्पित करते हैं ये उपासना के लिए आवश्यक नहीं है।

उपासना का आसन

इसी प्रकार ईश्वर के ध्यान के लिए आसनों के विषय में भी लोगों की अनेक प्रकार की धारणाएँ बनी हुई हैं। पद्मासन, सिद्धासन या वज्रासन लगायेंगे तभी

ध्यान होगा अथवा इस प्रकार बैठेंगे तभी ध्यान होगा किन्तु यह अनिवार्य नहीं है। ईश्वर की उपासना के लिए शरीर का स्थिर होना तो आवश्यक है। शरीर की स्थिरता के लिए हम किसी भी आसन को लगा सकते हैं जो हमारे अनुकूल हो, वह चाहे सिद्धासन हो, सुखासन हो या कोई भी। बल्कि देखने में आया है प्रारम्भिक साधकों के लिए पद्मासन, सिद्धासन आदि कठिन होते हैं। उसमें लम्बे काल तक साधक बैठ नहीं सकते। इसलिए जो कोई सरल आसन, जिससे लम्बे काल तक सीधा होकर बैठ सके, बिना कष्ट के उसको लगा सके, उस आसन को लगाना चाहिए।

अच्छे स्तर का ध्यान, उँचे स्तर का ध्यान धरती के ऊपर आसन लगा के सीधे होकर बैठने से होता है लेकिन यदि किसी व्यक्ति के कमर में दर्द है, पाँव में दर्द है, आसन लगा नहीं सकता है, चौकड़ी लगा नहीं सकता है, तो वह व्यक्ति बिना नीचे धरती पर बैठकर भी, कुर्सी पर बैठकर भी ध्यान कर सकता है, आराम कुर्सी पर बैठकर

भी ध्यान कर सकता है। बल्कि यदि इतना दर्द हो या प्रतिकूलता हो कि बैठ भी न सके तो पलंग पर, बिस्तर के ऊपर लेटकर भी

ध्यान कर सकता है। ध्यान करने की मुख्य क्रिया चित्त की एकाग्रता है न कि आसन लगाना। हाँ, धरती पर सीध ो बैठ करके ध्यान करने में आलस्य प्रमाद कम आता है, ध्यान सरलता से हो जाता है। आराम पूर्वक कुर्सी पर बैठने में, बिस्तर पर बैठने में यह बाधा उत्पन्न हो सकती है कि व्यक्ति को नींद आ सकती है, आलस्य आ सकता है इसलिए जो सामर्थ्यवान है, स्वस्थ है, वह धरती पर आसन ल ग ा क र , सीधा होके बैठे और ध्यान लगाये। जो पूर्ण स्वस्थ नहीं है, कोई बाधा है तो आराम पूर्वक कुर्सी पर भी बैठ सकता है, बिस्तर पर भी बैठकर ध्यान कर सकता है। मुख्य कार्य होता है मन को बाह्य विषयों से रोक करके ईश्वर की ओर लगाना।

उपासना का समय निर्धारण

इसी प्रकार ध्यान के समय के विषय में प्रायः व्यक्तियों की मान्यता बनी हुई है कि ईश्वर का ध्यान केवल सुबह ही होता है। बल्कि कुछ लोग तो ये भी मानते हैं कि ब्रह्ममुहूर्त में ही होता है अर्थात् सूर्योदय से पूर्व, जब सूर्य न निकले। उनकी बात सत्य है कि सूर्योदय से पूर्व ब्रह्ममुहूर्त के काल में ही उत्तम स्तर का ध्यान होता है लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि किसी का सूर्योदय से पूर्व उठने का अभ्यास नहीं है या उठ नहीं सकता है अथवा सामर्थ्य नहीं है

अथवा समय मिलता नहीं है तो ध्यान शेष दिन में होगा ही नहीं।

आदर्श यह है कि हम प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में उठकर ईश्वर का ध्यान करें किन्तु कोई बाधा आती है, कोई प्रतिकूलता है, कोई असमर्थता है, कोई अभाव है, कोई कष्ट है तो हम सूर्योदय के उपरान्त भी ध्यान कर सकते हैं। छः बजे भी कर सकते हैं, सात बजे भी कर सकते हैं, आठ बजे तक भी कर सकते हैं। और कोई यह कहे कि हमें दिन में आठ बजे तक भी समय नहीं। बच्चों को स्कूल भेजना होता है, घर के लोगों को दुकान जाना होता है, कार्यालय जाना होता है, फैक्ट्री जाना होता है तो वे व्यक्ति जो आठ बजे तक, दस बजे तक समय नहीं निकाल पाते हैं, कोई मजबूरी है तो दस बजे के बाद भी ध्यान कर सकते हैं। ग्यारह बजे कर सकते हैं, बारह बजे कर सकते हैं। कोई कहे बारह बजे तक समय नहीं मिलता है, बारह बजे न सही भोजन करके भी ध्यान कर सकते हैं। दो बजे कर सकते हैं अथवा जब भी विश्राम का समय हो जब भी अवकाश मिले ध्यान कर सकते हैं। दिन में अवकाश न मिले तो रात्रि में भी कर सकते हैं।

जो व्यक्ति यह कहता है कि मुझे प्रातःकाल समय नहीं मिलता इसलिए मैं ध्यान नहीं करता हूँ यह उसकी कमी रहेगी वह कभी भी ध्यान कर सकता है। अच्छा यह है कि व्यक्ति प्रातःकाल और सायंकाल करे लेकिन बाधाएँ हों तो फिर अन्य समय भी कर सकता है, रात्रि में कर सकता है, कभी भी कर सकता है, ईश्वर का ध्यान करना चाहिए। जब भी समय मिले, प्रसन्नता हो, एकाग्रता हो, बाधा न हो

तो तब ही कर लेवें। उत्तम समय न मिले, श्रेष्ठ समय न मिले तो दोपहर में करे, रात्रि में करे, ध्यान करना चाहिए।

बाधाओं का समाधान

समय के निर्धारण के विषय में कुछ व्यक्तियों की ऐसी मान्यता होती है कि जब तक नियमित निश्चित समय में ध्यान न किया जाए तो कोई लाभ नहीं होता है। लोग कहते हैं कि हमारी दिनचर्या अस्त व्यस्त है। हम निश्चित बना नहीं सकते हैं। कभी कुछ होता है, तो कभी कुछ, बाधा होती है, कभी कहीं जाना होता है, कभी कहीं आना होता है, कभी कोई आ जाता है, कभी कोई रोग होता है, कभी कोई वियोग होता है, कभी अनेक प्रकार के काम आ जाते हैं और ध्यान हमारा रुक जाता है। इस विषय में जानने की बात है कि व्यवधान कहाँ नहीं आते ? सबको व्यवधान आते हैं। यह अच्छी बात है कि समय का निर्धारण करना चाहिए। ६ बजे से ७ बजे तक, ७ बजे से ८ बजे तक, ८ बजे से ९ बजे तक, कोई भी, जब कोई बाधा आती है तो हम अपने इस नियम को अपवाद रूप में आगे पीछे कर सकते हैं।

ध्यान सम्बन्धि समय का नियम बनाना चाहिए, यह लाभकारी है, नियम से सुविधा रहती है। संस्कार भी बनते हैं कि हमने ६से ७ का नियम बनाया है। ६बजे से ७बजे तक हम ध्यान करेंगे। लेकिन जिस दिन बाधा आ गई है, तो उस दिन हम आगे पीछे ध्यान कर सकते हैं। अतिथि आ गया, कोई कार्य विशेष हो गया, कोई घटना घट गई,

हमने ६ से ७ बजे तक ध्यान किया नहीं, तो ७ से ८ बजे तक कर सकते है। ८ से ९ कर सकते हैं। फिर जब बाधा नहीं होती है, तो हम उसी नियमित समय से करें। समय का निर्धारण होना चाहिए, लेकिन बाधा के कारण ध्यान बिल्कुल ही न करें छोड़ देवें ऐसा नहीं होना चाहिए, इस बात का ध्यान रखा जाए।

उपासना से पूर्व स्नान, व्यायाम, शुद्धि आदि

लागों की ओर से एक बात यह भी आती है कि शास्त्रों में विधान है कि ईश्वर का ध्यान स्नान करके करना चाहिए। किन्तु सुबह-सुबह हम स्नान कर नहीं पाते हैं, शरीर में कुछ बाधा है, सुबह जल्दी उठ नहीं पाते हैं, रोग है इसलिए तो स्नान नहीं करेंगे तो ईश्वर की उपासना फिर कैसे करेंगे? उनकी यह बात ठीक है कि ईश्वर की उपासना करने के लिए जल्दी उठना चाहिए, भ्रमण करना चाहिए, शौच आदि से निवृत्त होकर के, स्नान आदि करके, व्यायाम आदि करके बैठना चाहिए। लेकिन कोई व्यक्ति यदि जल्दी नहीं उठ पाता है या व्यायाम नहीं कर पाता है या स्नान नहीं कर पाता है या शौच आदि से निवृत्त नहीं हो पाता है तो इसका मतलब यह नहीं कि वह ध्यान कर ही नहीं पाएगा। ध्यान तो करना ही चाहिए। अच्छा यह है कि स्नान करके ध्यान करे, व्यायाम करके ध्यान करे, लेकिन ये सब कार्य यदि किसी विवशता के कारण हो नहीं पाते, मजबूरी है, रोग है, शरीर में कृशता है, कमजोरी है

तो बिना स्नान किए भी, बिना व्यायाम किए भी, बिना भ्रमण किए भी, बिना शौच आदि जाए भी व्यक्ति बैठकर के ईश्वर का ध्यान कर सकता है। ईश्वर के ध्यान के लिए यह कोई आवश्यक नियम नहीं है कि शौच जाकर के ही ध्यान होगा, स्नान किए बिना, व्यायाम किए बिना ध्यान होगा ही नहीं, जल्दी उठे बिना ध्यान होगा ही नहीं, भ्रमण किए बिना ध्यान होगा ही नहीं। इस बात का ध्यान रखा जाये कि ध्यान करना चाहिए। जब प्रसन्नता होती है तब देखने में आता हैं कि हम बिना स्नान किए बहुत से काम कर लेते हैं जैसे–बातचीत भी कर लेते हैं, पढ़ भी लेते हैं, खा भी लेते हैं, यज्ञ भी कर लेते हैं। जब ये सब दूसरे लौकिक कार्य बिना स्नान किए, बिना भ्रमण किए, बिना शौच किए हो सकते हैं तो बिना स्नान किए ध्यान क्यों नहीं हो सकता है। हाँ इतना अवश्य है कि ध्यान अच्छे स्तर का नहीं होगा, ध्यान में बहुत अधिक एकाग्रता नहीं होगी। कुछ तो होगी। नहीं से तो अच्छा है। इसलिए बिना व्यायाम किए भी, बिना स्नान किए भी, बिना भ्रमण किए भी और बिना प्रारंभिक पूर्व क्रियाओं के किए भी व्यक्ति ईश्वर का ध्यान कर सकता है, करना चाहिए।

उपासना के लिए वस्त्र परिधान

एक बात यह भी अनेक बार सामने आती है कि ईश्वर का ध्यान उपासना करने के लिए वस्त्र विशेष पहने जाते हैं या पहनने चाहिए। उन्हीं वस्त्रों में ध्यान करना चाहिए। लाल वस्त्रों, पीले वस्त्रों, सफेद वस्त्रों या और कोई

अन्य प्रकार के वस्त्रों के बिना ध्यान नहीं हो सकता। ऐसा भी आवश्यक नहीं है कि हम विशेष प्रकार के वस्त्र पहनेंगे तभी ध्यान होगा। इतनी बात अवश्य है कि वस्त्र कोई भी हो परन्तु वस्त्र स्वच्छ होने चाहिए, शुद्ध होने चाहिए और कम होने चाहिए। क्योंकि बहुत अधिक वस्त्रों को पहन करके हम बैठेंगे तो नींद, आलस्य का प्रभाव पड़ता है। बिल्कुल कम वस्त्र पहनेंगे तो वायु का, ठण्ड का, गर्मी का प्रभाव पड़ता है।

अतः यथानुकूल वस्त्र पहन करके ध्यान कर सकते हैं। हाँ, कुछ व्यक्तियों ने ध्यान के विषय में अपने व्यक्तिगत नियम बना रखें हैं। उन्होंने अपनी अनुकूलता के दृष्टिकोण से, अपनी सुविधा के दृष्टिकोण से या अपने मन को उस प्रकार का बनाने के दृष्टिकोण से, वातावरण को बनाने के दृष्टिकोण से उन्होंने अलग वस्त्र बना रखें हैं। जब वे ईश्वर की उपासना करते हैं तो उन्हीं वस्त्रों को धारण करते हैं। उन वस्त्रों को धारण करके वे भोजन नहीं करते हैं, बाहर नहीं जाते हैं और अन्य क्रियाकलाप नहीं करते हैं। वे वस्त्र केवल मात्र ईश्वर की उपासना के काल में धारण करते हैं। इनका व्यक्तिगतरूप से ध्यान करते समय उन पर कुछ प्रभाव तो पड़ता है। लेकिन जब हम ध्यान करेंगे तो हमारे मन में यह नहीं रहेगा कि कौन से वस्त्र पहने हुए हैं। क्योंकि वस्त्र से हट करके हमें ईश्वर के पास जाना है। ईश्वर का चिंतन करना है। इसलिए विभिन्न रंग, रूप वाले वस्त्रों को धारण करने का कोई विशेष महत्त्व नहीं है।

उपासना हेतु आचमन, अंग-स्पर्श आदि क्रियाएँ

ऋषियों ने उपासना करने वाले व्यक्ति को आचमन, अंगस्पर्श आदि-आदि कुछ ऐसी क्रियाऐं बतायी हैं जो ध्यान करने में साधक होती हैं इसलिए ध्यान काल में आचमन भी करना चाहिए, अंग स्पर्श भी करना चाहिए इत्यादि। नए-नए साधकों को यह विषय बताया जाता है, सिखाया जाता है, इसलिए वे समझते हैं कि ईश्वर की उपासना करने में आचमन अनिवार्य है, अंगस्पर्श अनिवार्य है। पानी लेना ही पड़ेगा, पानी पीना ही पड़ेगा। पात्र लेने ही पड़ेंगे। क्रियाकांड में व्यक्ति कुछ कम विश्वास रखता है। श्रद्धा कम होती है। विचार करता है कौन पानी लेगा? कौन आचमन करेगा ? ठण्ड के समय में सर्दी लग रही है, ठण्ड में वैसे हमको जुकाम हो रहा है, खाँसी हो रही है। पी नहीं सकते, गला खराब हो जायेगा। तो इनके विषय में ध्यान देना चाहिए कि हमारे ऋषियों ने जो नियम बनायें हैं, उनके पीछे कोई रहस्य है। ये आचमन आदि का प्रयोग इसलिए किया जाता है कि हम कोई भी कार्य करें, पवित्र हो करके करें। जल का स्वभाव पवित्र है। तो हम ईश्वर का ध्यान करते हैं तो पवित्र होकर करें। इसलिए आचमन किया जाता है। और कोई प्रयोजन नहीं है।

यदि एक आदमी प्रसन्नचित्त है, स्वस्थ है और कोई व्यवधान नहीं है, पवित्र, एकाग्र मनवाला है, तो आचमन की कोई आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार अंगस्पर्श की बात आती है। यदि हमारे शरीर में सुस्ती नहीं है, आलस्य नहीं है, प्रमाद नहीं है तो आचमन व अंगस्पर्श की आवश्यकता नहीं है। इनका प्रयोजन ऐसा ही प्रतीत होता है कि आलस्य-प्रमाद हो तो आचमन करना चाहिए। पानी

पीना चाहिए। अंग-स्पर्श करना चाहिए और आलस्य-प्रमाद नहीं है और साधक पूर्ण स्वस्थ और एकाग्रचित्त होकर, पूर्णश्रद्धा प्रेम से और पूर्ण समर्पित होकर ईश्वर का ध्यान करने में समर्थ है तो इनकी आवश्यकता नहीं है। कुछ लोग ये विचार करते हैं कि हमें आचमन करना पडेगा, ये करना पडेगा, वो करना पड़ेगा, ठण्ड का समय है, ठण्ड आएगी, गले में रोग हो जाएगा। इसलिए वो डर कर भी ईश्वर का ध्यान नहीं करते। अतः इस नियम को भी ऐसा नहीं मानना चाहिए कि अनिवार्य रूप से इसको करना ही पड़ेगा, तभी उपासना होगी, नहीं तो उपासना होगी ही नहीं।

निश्चित मन्त्र

एक शंका प्रायः यह भी लोगों के मन में आती है कि जो स्वामी दयानन्द जी ने पंचमहायज्ञ विधि में, संस्कारविधि में जो-जो मंत्र लिखें हैं उन्हीं के माध्यम से ईश्वर का ध्यान हो सकता है अन्य किन्ही मंत्रों से ईश्वर का ध्यान नहीं हो सकता, क्या यह सत्य है? इसके विषय में उत्तर ये है कि ऐसी बात नहीं है कि उन्हीं मंत्रों के माध्यम से ही ईश्वर का ध्यान हो सकता है। हम वेद के किसी अन्य मंत्र से भी ईश्वर की उपासना, ध्यान कर सकते हैं। इतनी बात अवश्य है कि उन मंत्रों के अंदर ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव का वर्णन होना चाहिए। ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना विषय होने चाहिए। न केवल वेदमंत्र अपितु ऋषियों के बनाए ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों में जो श्लोक हैं उन श्लोकों के माध्यम से भी ईश्वर की उपासना कर सकते हैं। दर्शन आदि में ऋषियों द्वारा जो सूत्र बनाये हैं, उनके माध्यम से भी उपासना कर सकते हैं। ऋषियों ने ईश्वर के

गुण-कर्म-स्वभाव की व्याख्या करते हुए जिन वाक्यों की रचना की है, जो वेद-मंत्रों के भाष्य किए हैं, सूत्रों के भाष्य किए हैं, उन भाष्यों के वाक्यों से भी ईश्वर की उपासना कर सकते हैं।

अर्थात् हम किसी भी सामान्य शब्द से भी ईश्वर की प्रार्थना-उपासना कर सकते हैं शर्त एक है मंत्रों में, उन श्लोकों में, वाक्यों में, शब्दों में, ईश्वर के गुण-कर्म- स्वभाव का वर्णन आता हो। कोई भी मंत्र, कोई भी वाक्य, कोई भी सूत्र, कोई भी श्लोक ईश्वर कैसा है ? किस प्रकार के गुण वाला है ? किस प्रकार के कर्मों को करता है ? किस प्रकार के स्वभाव वाला है ? आदि विषयों को यदि बताता है तो उस मंत्र, सूत्र, श्लोक वाक्य, शब्द से हम ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना कर सकते हैं।

जो व्यक्ति मंत्र भी नहीं जानता है, श्लोक भी नहीं जानता है, सूत्र भी नहीं जानता है, संस्कृत भी नहीं जानता है, ऋषियों के वाक्यों को भी नहीं जानता है, कोई अच्छे संस्कृत का शब्द उसके पास नहीं हैं तो उसका भी उपाय है कि विद्वानों के, भक्तों के बनाए जो भजन, गीत हैं उन भजनों के माध्यम से भी ईश्वर का ध्यान कर सकता है। ध्यान के लिए एकाग्रता व समर्पण आवश्यक है। यदि हमारा समर्पण ईश्वर के प्रति है और हम एकाग्र हैं, उसके प्रति प्रेम है, तो ईश्वर का ध्यान भजन से भी कर सकते हैं और गीत से भी कर सकते हैं।

उपासना हेतु मन्त्र चयन

जिन मन्त्रों का चयन ऋषियों ने ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना के लिए किया है उन मन्त्रों में ईश्वर की उपासना कैसे करनी चाहिए ? क्या-क्या माँगना चाहिए? हमको क्या-क्या अपेक्षा है ? वो सारी बातें उन मंत्रों में निहित हैं। शरीर के विषय में, मन के विषय में, आत्मा के विषय में जो-जो हमारी अपेक्षाएँ हैं। हमें क्या चाहिए ? ईश्वर क्या दे सकता है ? ये सारी बातें इन मंत्रों में सूत्र रूप में बताया गया है।

ईश्वर कैसा है ? उसका गुण-कर्म-स्वभाव कैसा है ? हम कैसे ईश्वर को प्राप्त कर सकते है ? ईश्वर की उपासना करने से क्या लाभ होता है ? क्या महत्त्व, उपयोगिता है ? ईश्वर की उपासना से क्या हमारी प्रयोजन की सिद्धि होती है? ये सारी बातें जितने सूक्ष्मता से, सरलता से, संक्षेप से इन मंत्रों में बतायी गयी है उतनी और अन्य मंत्रों में नहीं मिलती हैं।

इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह उन मंत्रों के माध्यम से ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करें। क्योंकि ऋषि लोग बुद्धिमान थे उन्होंने विशेष मंत्रों का चयन किया, ऐसे वैसे सामान्य मंत्रों को नहीं ले लिया। फिर भी प्रायः देखने में आता है एक ही एक प्रकार के मंत्रों का उच्चारण करने से व्यक्ति ऊब जाता है जैसे कि एक-एक प्रकार का भोजन करने से, एक-एक प्रकार के वस्त्र पहनने से व्यक्ति ऊब जाता है ऐसे ही एक ही एक प्रकार के मंत्रों से भी ऊब जाता है। इसमें यह अवकाश है कि हम और भी अनेक अन्य प्रकार के मंत्रों को ले कर, जिसमें ईश्वर के गुण-कर्म- स्वभाव अच्छी प्रकार से बताये गये हों और उन

मन्त्रों में यह भी बताया गया हो कि उपासना के क्या लाभ क्या हैं? उन मंत्रों के माध्यम से भी ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना की जा सकती है ऐसा कोई अनिवार्य नियम नहीं है कि केवल संस्कार विधि या पंचमहायज्ञ पुंस्तक में बताये गये मंत्रों से ही ईश्वर का ध्यान हो सकता है अन्य मंत्रों, सूत्रों, श्लोकों, वाक्यों या शब्दों से नहीं हो सकती।

उपासना में सफलता हेतु ईश्वर-समर्पण

ईश्वर में भक्ति विशेष-अर्थात् ईश्वर से अधिक प्रिय किसी को नहीं मानना, ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल ही आचरण करते हुए, प्रत्येक कार्य को ईश्वर को समर्पित करना और उसका लौकिक फल= (धन, सम्मान आदि) न चाहना 'ईश्वर-समर्पण' कहलाता है।

ईश्वर को अपने अन्दर-बाहर उपस्थित मानकर तथा 'ईश्वर मुझे देख, सुन, जान रहा है' ऐसा समझकर सम्पूर्ण व्यवहार करने वाले व्यक्ति की समाधि शीघ्र ही लग जाती है।

ईश्वर-समर्पण की विधि

जिस ईश्वर के समर्पित होना है, उसके स्वरूप (=गुण, कर्म, स्वभाव) को अच्छी प्रकार समझना चाहिए, जिससे ईश्वर के विषय में किसी प्रकार की भ्रान्ति या संशय न रहे। वेद, दर्शन तथा उपनिषद् आदि वैदिक ग्रन्थों का स्वाध्याय-श्रवण इसमें बहुत सहायक होता है।

''मेरे पास जो शरीर, धन, बल, विद्या आदि साधन विद्यमान हैं, इन सब का निर्माता, पालक, रक्षक-स्वामी ईश्वर है, मैं नहीं हूँ, मैं इन सब का प्रयोक्ता मात्र हूँ।'' इस विषय पर चिन्तन करके निश्चय करना चाहिए।

''ईश्वर प्रदत्त इन शरीर, धन आदि सब साधनों का प्रयोग, मैं ईश्वर की आज्ञा के अनुरूप (=वेद तथा ऋषिकृत ग्रन्थों के निर्देशानुसार) ही

करूंगा, स्वेच्छा से नहीं" ऐसा भी संकल्प करना चाहिए।

शरीर, बुद्धि, बल, धनादि समस्त साधनों का प्रयोग ईश्वर की प्राप्ति के लिए ही करना चाहिए, लौकिक उद्देश्य-धन, मान, प्रतिष्ठा, यश आदि की प्राप्ति के लिए नहीं करना चाहिए।

शरीर, वाणी तथा मन से कार्य को करते हुए मन में यह भावना बनानी चाहिए कि ईश्वर सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी होने के कारण मेरी प्रत्येक क्रिया को जान रहा हैं। मैं कभी भी, कहीं भी, किसी भी क्रिया को उससे छिपा नहीं सकता, जब ईश्वर जान ही रहा है, तो क्यों न मैं अपनी क्रियाओं को उसके सामने रखकर करुँ ? ऐसा विचार कर साधक स्वयं को तथा अपनी समस्त क्रियाओं को ईश्वर को समर्पित कर देवे।

ईश्वर समर्पण करने वाले योगाभ्यासी को मन से ऐसा विचार भी बनाना चाहिए कि "मैं ईश्वर में डूबा हूँ और मुझ में भी ईश्वर है- अर्थात् मैं उसमें हूँ और वह मुझ में है।"

ईश्वर समर्पण करने वाले साधक को अपने आपको अन्तर्मुखी वृत्तिवाला बनाये रखना चाहिए अर्थात् मन इन्द्रियों पर पूरा नियंत्रण करके आवश्यकता अनुसार ही लौकिक व्यवहारों को करना चाहिए।

ईश्वर समर्पण करने वाला साधक अपने व्यवहारों को राग-द्वेष आदि दोषों से रहित= निष्काम भावना से करे। किसी कार्य में सफलता न मिलने पर या बाधा उपस्थित होने पर मन में शान्ति, प्रसन्नता, सन्तुष्टि की स्थिति बनाये रखे। मन में किसी भी प्रकार का क्षोभ, चंचलता, शोक, चिन्ता आदि उत्पन्न न करे। इस हेतु उसे घोर तपस्या करनी पड़ती है।

बार बार चिन्तन करके योगाभ्यासी को "संसार के समस्त उत्पन्न पदार्थ अनित्य हैं तथा इन पदार्थों से मिलनेवाला सुख क्षणिक व दुःखमिश्रित है" ऐसा निश्चय करना चाहिए। ऐसा करने से उसके मन में इन पदार्थों

के प्रति तृष्णा नष्ट हो जाती है और ईश्वर के प्रति प्रेम, श्रद्धा व रुचि बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति ईश्वर समर्पण भी अच्छे स्तर का कर सकता है। क्योंकि वैराग्य के बिना ईश्वर में प्रेम नहीं होता। और ईश्वर के प्रति प्रेम हुए बिना ईश्वर प्रणिधान नहीं बनता।

प्रारंभ में नये साधक को शान्त एकान्त स्थान पर आसन लगाकर, आँखे बन्द करके ईश्वर-समर्पण करने का अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास होने पर वह आँखें खुली रखकर और भीड़ भरे स्थान में भी ईश्वर समर्पण करने में सफल हो जाता है।

साधक को दिनभर लौकिक क्रिया-व्यवहारों को करते हुए भी साथ-साथ ईश्वर समर्पण की स्थिति बनाये रखनी चाहिए। इसके लिए पहले स्थूल कार्यों यथा-भ्रमण, व्यायाम, स्नान, भोजन करना, बर्तन-कपड़े-मकान धोना आदि को करते हुए ईश्वर समर्पण करने का अभ्यास करना चाहिए। क्योंकि इन कार्यों को करते हुए अपेक्षाकृत कम एकाग्रता की आवश्यकता रहती है।

जब स्थूल कार्यों में ईश्वर-समर्पण अच्छी प्रकार से बनाये रखने का अभ्यास हो जाता है, तब फिर सूक्ष्म कार्यों में, यथा पढ़ना-पढ़ाना, व्याख्यान देना इत्यादि को करते हुए भी ईश्वर-समर्पण का अभ्यास करना चाहिए।

किसी कार्य को करते हुए साथ-साथ ईश्वर समर्पण नहीं किया जा सके, तो उस कार्य को करने से पूर्व मन ही मन ईश्वर का विचार करके निम्न वाक्यों से उसकी आज्ञा लेनी चाहिए "हे परमेश्वर। मैं अमुक कार्य को प्रारंभ करने जा रहा हूँ। इस कार्य की सिद्धि के लिए मैं आपकी सहायता चाहता हूँ। मुझे सामर्थ्य, उत्साह व प्रेरणा प्रदान करके मेरी रक्षा करें, जिससे मैं कोई अनिष्ट चिन्तन न करुँ।" जब कार्य सम्पन्न हो जावे तब पुनः ईश्वर का स्मरण करके उसका इन शब्दों में धन्यवाद करे कि "हे प्रभो ! आपकी कृपा तथा सहायता से मैंने यह कार्य पूरा किया है, मैं

आपका धन्यवाद करता हूँ। मुझे इस कार्य का कोई लौकिक फल (=धन, सम्मान आदि) नहीं चाहिए। यह मैंने केवल कर्तव्य भावना से किया है।"

उपर्युक्त निर्देश के अनुसार प्रयास करने पर योगाभ्यासी को 'ईश्वर -समर्पण' विषय में अवश्य ही सफलता मिलती है।

ईश्वर-जीव-प्रकृति का चिन्तन

ईश्वर का चिन्तन-

हे परमेश्वर आप **सत्** हैं, अर्थात एक सत्तात्मक पदार्थ हैं। आप **चित्** हैं, अर्थात चेतन हैं, सब कुछ जानते हैं। आप **आनन्दस्वरूप** हैं, आप कभी भी दुःखी नहीं होते। आप **निराकार** हैं, आपकी कोई आकृति, रंगरूप या मूर्ति नहीं हैं। आप **सर्वशक्तिमान्** हैं, संसार को बनाने, पालने, विनाश करने तथा जीवों को कर्म फल देने में आप किसी की सहायता नहीं लेते। आप **न्यायकारी** हैं, जो मनुष्य जैसा (अच्छा या बुरा) और जितना कर्म करता है, उसे वैसा व उतना ही फल देते हैं। हे प्रभो, आप **दयालु** हैं, आपने सब प्राणियों पर दया करके उन्हें सब प्रकार के सुख साधन प्रदान किये हैं। आप **अजन्मा** हैं अर्थात् जीवों के समान शरीर से संयोगरूपी जन्म नहीं लेते हैं। आप **अनन्त** हैं, अर्थात् आप की विशालता की कोई सीमा नहीं हैं। आप **निर्विकार** हैं, जैसे शाक, फल आदि जड़ पदार्थों में गलना-सड़ना, घटना-बढ़ना होता है वैसे विकार आप में नहीं होते। हे परमेश्वर ! आप **अनादि** हैं, आपकी उत्पत्ति कभी भी नहीं हुई। आप **अनुपम** हैं, आपके समान-ज्ञान-बल-आनन्दवाली और कोई वस्तु नहीं हैं। हे प्रभो ! आप **सर्वाधार** हैं, आप ब्रह्माण्ड में स्थित पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, आकाश-गंगा आदि सब पदार्थों के आधार हैं। हे देव आप **सर्वेश्वर** हैं, संसार में जितने भी धन, सम्पत्ति, ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वृक्ष-वनस्पति, ग्रह-उपग्रह आदि पदार्थ हैं, उन सब के आप ही स्वामी हैं।

आप **सर्वव्यापक** हैं, संसार के प्रत्येक सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणु और आत्मादि में तथा स्थूल से स्थूल सूर्यादि पदार्थों में आप विद्यमान हैं। हे प्रभो, आप **सर्वान्तर्यामी** हैं, आप सब में विद्यमान होकर सब का नियंत्रण करते हैं। हे परमेश्वर ! आप **अजर** हैं, कभी भी वृद्ध-बूढ़े (शक्तिहीन) नहीं होते। आप **अमर** हैं, कभी भी मरते नहीं हैं। आप **अभय** हैं, आपको, कभी भी किसी से किञ्चित् मात्र भय नहीं लगता है। आप **नित्य** हैं, सदा से हैं और सदा रहेंगे । हे प्रभो ! आप **पवित्र** हैं अर्थात् न तो आप में अविद्या है और न आप कभी पाप कर्म करते हैं । हे परमेश्वर ! आप **सृष्टिकर्ता** हैं, आप ही ने इस दृश्यमान् और अदृश्यमान् संसार को बनाया है। हे दयानिधान ! संसार में केवल आप ही उपासना करने योग्य हैं, अन्य कोई वस्तु उपास्य नहीं है। आप हम पर कृपा कीजिये, जिससे हम आप की नित्य दोनों समय उपासना कर सकें और आपसे ज्ञान, बल, आनन्द, निर्भयता, प्राप्त करके, अपने जीवन को सफल बना सकें।

जीव का चिन्तन -

हे परमेश्वर ! मैं सत्-चित्-स्वरूप आत्मा हूँ, शरीर नहीं हूँ। यह शरीर तो मेरा निवास स्थान है। मैं इस शरीर में, हृदय में रहता हूँ। यह शरीर तो मरण-धर्मा है, किन्तु मैं नित्य, अजर, अमर हूँ। हे प्रभो ! मैं जीव, न स्त्री हूँ, न पुरुष हूँ और न ही नपुसंक हूँ। आप मुझे जिस जिस शरीर के साथ जोड़ देते हैं, उस शरीरवाला कहा जाता हूँ। हे परमात्मन् ! मेरा इस शरीर के साथ सम्बन्ध अनित्य है और शरीर के समान माता, पिता, भाई, बहन आदि सम्बन्धियों के साथ भी सम्बन्ध अनित्य है। इस शरीर के छूट जाने पर ये सांसारिक सम्बन्ध भी छूट जाते हैं। आदि सृष्टि से लेकर अब तक न जाने कितने ही आत्माओं के साथ मेरा सम्बन्ध बना और टूटा है। न जाने कितने व्यक्तियों का मैं पिता बना, माता बना, पुत्र-पुत्री बना, भाई-बहन बना और न जाने मैंने कितनी बार अपने कर्मफलानुसार पशु-पक्षियों

के शरीर धारण किये होंगे। इन सब की गणना करना भी असंभव है। हे प्रभो ! मैं जीव अत्यन्त अणुरूप हूँ और एकदेशी हूँ। मेरा अपना ज्ञान भी बहुत थोड़ा है। आप द्वारा शरीर, मन व इन्द्रियों आदि को प्राप्त करने पर ही मैं अपने स्वरूप को जानने में और कर्मों को करने में समर्थ होता हूँ। हे परमात्मन् ! आपने मुझे विविध साधन प्रदान करके भी कर्म करने में स्वतंत्रता दी है। मैं अपनी इच्छा से अच्छे-बुरे कर्मों को करने, न करने में स्वतंत्र हूँ, किन्तु उन कर्मों का फल भोगने में आपकी न्याय-व्यवस्था के आधीन रहता हूँ। अपने द्वारा किये गये अच्छे-बुरे कर्मों के फल से बच नहीं सकता, कभी न कभी अवश्य ही भोगना पड़ता है। इन कर्म-फलों का उत्तरदायित्व मुझ पर ही है, मन, बुद्धि, शरीरादि पर नहीं है। हे देव ! जैसे मैं आत्मा हूँ, वैसे ही समस्त संसार के प्राणी भी आत्माएँ हैं। स्वरूप से समस्त आत्माओं में कोई भेद नहीं है। जो भेद दिखाई देता है, वह शरीर, बुद्धि, ज्ञान, बल, कर्मों आदि के कारण से है। हे परमात्मन् ! जब तक मुझ में अविद्या (राग-द्वेष-मोह) है, तब तक मैं इस जन्म मरण के चक्र से छूट नहीं पाऊँगा। हे प्रभो ! अब तो मैं आपको प्राप्त करना चाहता हूँ, क्योंकि मैंने पढ़ा है, सुना है कि जो जीव आपकी अनुभूति-साक्षात्कार कर लेता है, वह समस्त दुःखो से छूटकर, आपके परमानन्द का भागी बन जाता है। अतः हे प्रभो ! अब तो मुझे ज्ञान, बल, आनन्द प्रदान करके कृतकृत्य कीजिये, इसी उद्देश्य को लेकर अब मैं आपकी उपासना करने बैठा हूँ। आप दया के भण्डार हैं, मेरी इस आशा को शीघ्र ही सफल करेंगे ऐसा मुझे विश्वास है।

प्रकृति का चिन्तन -

हे परमेश्वर ! जो यह संसार हमें दिखाई दे रहा है, यह आपको प्राप्त करने का साधन है। इस संसार का मूल कारण 'प्रकृति' है। प्रकृति अत्यन्त सूक्ष्म परमाणुओं का नाम है। ये परमाणु तीन प्रकार के हैं। इनका नाम 'सत्त्वगुण', 'रजोगुण' और 'तमोगुण' है। ये तीनों प्रकार के परमाणु

जड़ हैं, इनमें ज्ञान नहीं है। ये परमाणु अनादि और अनन्त हैं, अर्थात् न कभी उत्पन्न हुए न नष्ट होंगे। हे प्रभो ! आप इन्हीं सूक्ष्म परमाणुओं को लेकर अपनी अनन्त शक्ति और ज्ञान से इस दृश्यमान् सृष्टि को बनाते हैं। सर्वप्रथम इन परमाणुओं को जोड़कर महत्तत्व=बुद्धि नामक पदार्थ को बनाते हैं, जिसके सहयोग से हम बाह्य और आन्तरिक विषयों का ज्ञान करते हैं, तत्पश्चात् महत्तत्त्व से 'अहंकार' नामक पदार्थ को बनाते हैं, जिससे जीवात्मा अपने अस्तित्त्व=सत्ता की अनुभूति करता है। हे परमेश्वर ! जो आप अहंकार से १६ पदार्थ बनाते हैं, वे पदार्थ निम्न हैं - पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (=घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, त्वक् और रसना), पाँच कर्मेन्द्रियाँ (=हस्त, पाद, वाक्, गुदा, उपस्थ) पाँच तन्मात्राएँ (=सूक्ष्म भूत) जो कि गन्ध तन्मात्र, रूप तन्मात्र, शब्द तन्मात्र, स्पर्श तन्मात्र और रस तन्मात्र हैं। सोलहवां मन बनाते हैं, जिससे हम संकल्प-विकल्प आदि अनेक प्रकार के कार्य करते हैं। हे भगवन् ! फिर इन पाँच तन्मात्राओं से आप पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पाँच स्थूल भूतों का निर्माण करते हैं। इन्हीं पाँच स्थूल भूतों के संयोग से आप, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि प्राणियों के शरीर बनाते हैं तथा इन्हीं भूतों से सूर्य, पृथ्वी, चन्द्र आदि विभिन्न नक्षत्र ग्रह उपग्रह बनाते हैं। ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष तक यह संसार बना रहता है और ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष तक यह संसार अपने कारणरूप (=प्रकृति) में रहता है, जिसे प्रलय अवस्था कहते हैं। हे कृपालु देव ! आपने यह संसार दो प्रयोजनों की सिद्धि के लिए बनाया है। एक भोग, दूसरा अपवर्ग। हे प्रभो ! सशरीर इस संसार में रहते हुए हम जीव पूर्ण और स्थिर सुख को कदापि प्राप्त नहीं कर सकते। संसार के समस्त पदार्थों में जो सुख लेता है उसको परिणाम, ताप आदि चार प्रकार के दु:खों को अवश्य ही भोगना पड़ता है। हे प्रभो ! न जाने कितने वर्षों से मैं

इस घोर संसार में नाना योनियों को प्राप्त करके, जन्म-मरण इत्यादि दारुण दुःखों को भोगता आया हूँ। अब तो आपसे मेरी विनम्र प्रार्थना है कि मुझे ज्ञान, बल, सामर्थ्य प्रदान करो, जिससे मैं मुक्ति के मार्ग की ओर प्रवृत्त होऊँ और आपकी अमृतमयी गोद में बैठकर पूर्ण व स्थायी सुख को प्राप्त करु।

ध्यान हेतु ईश्वर का जप की विधि

१. किसी मन्त्र, वाक्य या शब्द का बार-बार उच्चारण करना 'जप' कहलाता है।

२. जिस मन्त्र, वाक्य या शब्द से जप किया जाये, वह ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना या उपासना से सम्बन्धित होना चाहिए, अन्य किसी विषय से सम्बन्धित नहीं होना चाहिए।

३. जप के समय तीन क्रियाएँ करनी चाहिएँ।

(अ) शब्द का उच्चारण,

(ब) शब्द के अर्थ का विचार (जिसे भावना कहते हैं),

(क) ईश्वर प्रणिधान।

उपर्युक्त तीनों क्रियाओं के बिना जप का पूरा लाभ नहीं होता।

४. यदि जप के काल में तीनों क्रियाएँ एक साथ न हो सकें तो पहले शब्द / मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए। फिर रुक कर शब्द / मन्त्र के अर्थ का विचार करना चाहिए। किन्तु ईश्वर प्रणिधान तो दोनों क्रियाओं में साथ रहना चाहिए। अभ्यास से तीनों क्रियाएँ एक साथ होने लगती हैं।

५. जप मुख्य रूप से तीन प्रकार से किया जाता है -

(अ) ऊँचे स्वर से बोलकर,

(ब) बिना ध्वनि के, केवल होठ हिलाकर,

(क) मन में उच्चारण करके (बिना होठ हिलाये)।

६. नवीन साधक को ऊँचे स्वर से जप करने में सरलता रहती है। ऐसा करने से वह वृत्तियों को रोकने में समर्थ हो जाता है। जैसे-जैसे साधक की योग्यता बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे दूसरी व तीसरी विधि अनुकूल पड़ने लगती है।

७. एक काल में (एक समय की उपासना में) एक ही मन्त्र या शब्द का बार-बार उच्चारणपूर्वक जप करना चाहिए। जैसे ओऽऽऽऽम् न्यायकारी, ओऽऽऽऽम् न्यायकारी, ओऽऽऽऽम् न्यायकारी। ऐसा करने से ईश्वर के स्वरूप का हम पर विशेष प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत शीघ्र ही शब्दों को बदलते जाने से विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, जैसे कि ओऽऽऽऽम् न्यायकारी, ओऽऽऽऽम् दयालु, ओऽऽऽऽम् अजन्मा इत्यादि।

८. यद्यपि ईश्वर के किसी भी नाम का जप, ध्यान के समय किया जा सकता है, किन्तु जिन मन्त्रों या शब्दों से या वाक्यों से ईश्वर का सर्वाधिक स्वरूप (=गुण, कर्म, स्वभाव) हमारे समक्ष उपस्थित होता है, उन शब्दों या मन्त्रों का जप करना अधिक लाभकारी रहता है। ऐसे अनेक शब्दों या मन्त्रों का निर्वाचन ऋषियों ने कर रखा है, हमें उन्हीं के माध्यम से जप करना चाहिए, जैसे कि -

(क) **ओ३म्,** (ख) गायत्री मन्त्र, (ग) प्राणायाम मन्त्र = **ओ३म् भूः ओ३म् भुवः** इत्यादि (घ) **ओ३म् असतो मा सद्गमय...** । इसी प्रकार से अन्य शब्दों से या मन्त्रों से भी जप कर सकते हैं जैसे कि (च) **ओ३म् आनन्द** । (छ) **ओ३म् सत्यं, ज्ञानं, अनन्तं, ब्रह्म** । (ज) **ओ३म् तेजोऽसि तेजो मयि धेहि...** (झ) **ओ३म् विश्वानि**

देव सवितर् ... इत्यादि ।

९. ईश्वर के जिस गुण, कर्म, स्वभाव को मन सें रख कर जप किया जाता है तो ईश्वर के उसी गुण की प्राप्ति होती है, जैसे कि -

(अ) **'आनन्द'** शब्द से जप करें तो आनन्द की प्राप्ति होगी ।

(ब) **'सर्वज्ञ'** शब्द से जप करें तो ज्ञान की प्राप्ति होगी ।

(क) **'रक्षक'** शब्द से जप करें तो हमारे अन्दर भी और दूसरों की रक्षा करने का गुण आयेगा ।

(ड) **'निर्भय'** शब्द से जप करें तो निर्भयता की प्राप्ति होगी ।

'ओ३म्' शब्द की जपविधि *(ध्वनिपूर्वक बोलकर)*

इसकी विधि इस प्रकार से है कि साधक को अच्छी प्रकार आसन लगाकर (=सीधा होकर) बैठना चाहिए और प्राण वायु को शरीर में धीरे-धीरे भर लेना चाहिए। जब वायु शरीर में पूरी तरह भर जावे तो 'ओ३म्' शब्द का गंभीरता से प्रेम पूर्वक उच्चारण करना चाहिए। उच्चारण करते समय अन्दर भरी हुई वायु अपने आप बाहर निकलती रहेगी । जब 'ओ३म्' शब्द का उच्चारण पूरा हो जावे, तब कुछ काल रुक कर 'ओ३म्' शब्द का एक अर्थ (=यथा सर्वरक्षक) का विचार करना चाहिए । यह विचार इन शब्दों में किया जा सकता है कि "हे परमेश्वर ! आप सर्वरक्षक हैं, आप मेरी रक्षा करो"। इतना विचार कर फिर शरीर में दुबारा श्वास भर कर पूर्व की तरह धीरे-धीरे गंभीरता व प्रेमपूर्वक ओ३म् शब्द का उच्चारण करना चाहिए । जब उच्चारण हो जावे तो पुनः उसी प्रकार अर्थ का विचार करना चाहिए । इस प्रकार बार-बार उपासना काल में 'ओ३म्' शब्द का लम्बे स्वर से उच्चारण तथा इस शब्द के किसी एक अर्थ का चिन्तन करना चाहिए। इन दोनों कार्यों को करते हुए एक तीसरा

काम ईश्वर प्रणिधान भी करना चाहिए। "ईश्वर मुझे देख-सुन-जान रहा है, मैं उसी में डूबा हुआ हूँ, ईश्वर मेरे अन्दर विद्यमान है" ऐसा विचार करना (=भावना बनाना) "ईश्वर प्रणिधान" कहलाता है। शब्द का उच्चारण, शब्द के अर्थ का विचार तथा ईश्वर प्रणिधान बनाये रखने से ही जप का विशेष लाभ होता है।

इसी प्रकार बिना उच्चारण किये (केवल होठ हिलाकर) तथा होठ को भी न हिलाते हुए मन में शब्द का उच्चारण, अर्थ चिन्तन तथा ईश्वर प्रणिधान करते हुए जप किया जा सकता है।

गायत्री मन्त्र की जप विधि

प्रथम विधि : उपासना काल में आसन पर बैठकर अत्यन्त श्रद्धा व प्रेम से गंभीरता पूर्वक 'गायत्री-मन्त्र' का उच्चारण करना चाहिए। मन्त्र पूरा बोलने के पश्चात् मन्त्र के प्रत्येक शब्द के अर्थ पर विचार करना चाहिए। प्रथम शब्द का अर्थ विचार करके फिर दूसरे शब्द को लेकर उस पर विचार करना चाहिए। इस प्रकार जब मंत्र के सभी शब्दों का अर्थ विचार हो जावे तो पुनः पूर्व की तरह 'गायत्रीमंत्र' का उच्चारण करना चाहिए और फिर एक-एक शब्द का क्रमशः अर्थ चिन्तन करना चाहिए।

'गायत्री-मन्त्र' का जप अर्थ-चिन्तन सहित ही करना चाहिए। चाहे एक मन्त्र पर उपर्युक्त विधि से ५-७ मिनट भी क्यों न लगें। मन्त्र का उच्चारण तथा मन्त्र के अर्थ का चिन्तन करते हुए 'ईश्वर प्रणिधान' भी बनाये रखना चाहिए।

द्वितीय विधि : जब साधक को गायत्री मन्त्र के समस्त शब्दों का अर्थ स्मरण हो जावे तो गायत्री मन्त्र को एक साथ पूरा न बोलकर लम्बे स्वर से धीरे-धीरे, एक-एक शब्द को उच्चारण करते हुए साथ-साथ उस शब्द के अर्थ का भी विचार करते जाना चाहिए। जैसे 'ओऽऽऽम्' शब्द

बोलते हुए इस शब्द का अर्थ "हे ईश्वर आप सर्वरक्षक हैं...." इत्यादि। इसका विचार भी मन में साथ-साथ करना चाहिए। फिर 'भूः ऽऽऽऽ' बोलते हुए "आप मेरे प्राणाधार हैं...." इत्यादि अर्थ विचारते रहना चाहिए। इसी प्रकार से पूरे मन्त्र का उच्चारण लम्बे स्वर से करते हुए अर्थ विचार भी साथ-साथ करते जाना चाहिए। इन दोनों क्रियाओं को करते समय 'ईश्वर प्रणिधान' भी अवश्य बना रहे ऐसा प्रयत्न करना चाहिए।

ध्यान के काल में आलस्य का कारण

ध्यान के समय में नींद को या आलस्य को रोकना आवश्यक होता है। अनेक साधकों को तो यह पता भी नहीं चलता कि वे ध्यान करते हुए सो जाते हैं। अनेकों को पता चल जाता है, किन्तु उपासना काल में नींद या आलस्य क्यों आता है, वे कारणों को ठीक-ठीक जान नहीं पाते हैं। नींद तथा आलस्य आने के कुछ कारणों का यहाँ उल्लेख किया जाता है।

रात्रि में नींद पूरी नहीं होना या अच्छी न होना।

पेट की शुद्धि न होना - (शौच खुलकर न आना)।

शारीरिक परिश्रम या व्यायाम अधिक मात्रा में करना।

भोजन प्रतिकूल, गरिष्ठ (=भारी), अधिक मात्रा में खाना।

तामसिक या नशीली वस्तु (=तम्बाकू, भांग आदि) का प्रयोग करना।

शरीर में ज्वरादि रोग का होना।

शरीर में निर्बलता का होना।

आसन ठीक प्रकार से नहीं लगाना (=कमर सीधी करके न बैठना)

उपासना से पूर्व स्नान करके न बैठना।

उचित मात्रा में व्यायाम, भ्रमण, आसन आदि न करना।

ठण्ड के दिनों मे रजाई आदि गर्मी देने वाले वस्त्रों को

अधिक मात्रा में धारण करना (ओढ़कर बैठना)।

मानसिक परिश्रम अध्ययन-चिन्तन आदि अधिक करना।

आलसी व्यक्तियों के साथ बैठना।

सन्ध्या के मन्त्रों का शब्दार्थ न जानना।

उचित मात्रा मे प्राणायाम न करना।

ईश्वर के प्रति प्रेम, श्रद्धा, रुचि का न होना।

योगाभ्यास के महत्व या लाभ को न समझना।

साधक लोगों को देखना चाहिए कि उपर्युक्त कारणों में से कौन सा कारण मुझ पर लागू होता है। उसे जानकर दूर करना चाहिए। जिससे योगाभ्यास में सफलता मिले।

ईश्वर उपासक के लक्षण

१. सम्पूर्ण दिन ईश्वर के साथ सम्बन्ध बनाये रखना।

२. समस्त संसार का (अपने शरीर, मन, बुद्धि आदि सहित) निर्माता, पालक, रक्षक ईश्वर को मानना।

३. वेद तथा वेदानुकूल ऋषिकृत ग्रन्थों पर अत्यन्त श्रद्धा रखना।

४. ईश्वर-जीव-प्रकृति (त्रैतवाद) के स्वरूप को यथार्थ रूप में जानना।

५. संसार के विषय भोगों में चार प्रकार का दुःख अनुभव करना।

६. विषय भोगों में सुख नहीं लेना अपने मन इन्द्रियों पर अधिकार होना।

७. ईश्वर प्रदत्त साधनों का ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल (धर्म पूर्वक) साधक के रूप में, उचित मात्रा में उपयोग करना।

८. फल की आशा से रहित (तीन एषणाओं से रहित) निष्काम भावना से कर्मों को करना।

९. इच्छा का विघात, वियोग, अपमान, विश्वासघात, असफलता, अवसर चूकना इत्यादि स्थितियों में चिन्तित, भयभीत, क्षोभयुक्त, दु:खी न होना।

१०. समस्त संसार को ईश्वर में डूबा हुआ देखना।

११. दैनिक क्रिया-व्यवहारों में (विचारना, बोलना, लेना-देना, समझना-समझाना आदि में) अत्यन्त सावधान रहना।

१२. आध्यात्मिक अविद्या (अनित्याशुचि आदि) से रहित होना और विद्या से युक्त होना।

१३. समस्त अविद्याजनित संस्कारों को दबाये रखने में समर्थ होना।

१४. यमों का पालन सार्वभौम महाव्रत के रूप में करना , चाहे मृत्यु भी क्यों न आ जाये।

१५. हर समय प्रसन्न, सन्तुष्ट, निर्भय, उत्साही, पुरुषार्थी और आशावादी बने रहना।

१६. शरीर, बल, विद्या आदि उपलब्धियों का एषणाओं के लिये प्रदर्शन न करना।

१७. किसी के द्वारा बताये जाने पर असत्य का त्याग और सत्य का ग्रहण तत्काल करना।

१८. धन, बल, कीर्ति आदि की प्राप्ति के प्रलोभन में आदर्शों का त्याग या उनके साथ समझौता कदापि न करना।

१९. शुद्ध ज्ञान, शुद्ध कर्म और शुद्ध उपासना इन तीनों का समायोजन करके चलना।

२०. गंभीर, मौनी, एकान्तसेवी, संयमी, तपस्वी होना (विशेषकर प्रारम्भिक काल के लिये)।

२१. देश, जाति, प्रान्त, भाषा, मत, पन्थ, रूप-रंग, लिंग आदि भेद-भावों से रहित सब से प्रेम करने वाला सब का हितैषी, दयालु, कल्याण

करने वाला होना।

२२. योग दर्शन, उपनिषद् वा अन्य आध्यात्मिक ग्रन्थों में आये हुए सत्य सिद्धान्तों को ठीक समझकर उनका आचरण करना।

मन पर अधिकार करने की विधि

मन के विषय में प्रायः व्यक्ति ऐसा कहते हैं कि "मेरा मन तो रुकता ही नहीं है, मन में खूब विचार आते हैं और जितना मैं इन्हें रोकने का प्रयत्न करता हूँ उतने ही अधिक विचार आते हैं" इत्यादि। किन्तु ये सब मान्यतायें मिथ्या हैं। वास्तविकता यह है कि मन, जड़ प्रकृति से बनी हुई एक जड़ वस्तु है, यह चेतन नहीं है। इसलिये इस मन में अपने आप कोई विचार नहीं आता, और न ही यह स्वयं किसी विचार को उठाता है। इस जड़ मन को चलाने वाला चेतन जीवात्मा है। जब जीवात्मा अपनी इच्छा से किसी अच्छे या बुरे विचार को मन में उठाना चाहता है, तब ही उस विषय से सम्बन्धित विचार मन में उत्पन्न होता है।

जैसे टेप (Tape) में अनेक प्रकार की ध्वनियों का संग्रह होता है। ऐसे ही मन में भी अनेक प्रकार के विचार संस्कारों के रूप में संग्रहीत रहते हैं। जब व्यक्ति अपनी इच्छा व प्रयत्न से टेप को चलाता है तो ध्वनियां सुनाई देने लगती हैं, अपने आप ध्वनियां सुनाई नहीं देती। इसी प्रकार से जब जीवात्मा मन में संग्रहीत संस्कारों को अपनी इच्छा व प्रयत्न से उठाता है तभी मन में विचार उत्पन्न होते हैं। यह मन के कार्य करने की एक पद्धति हुई।

इसके अतिरिक्त मन का कार्य एक कैमरा यंत्र के समान भी समझना चाहिए। जैसे फोटोग्राफर अपनी इच्छा से जिस वस्तु का चित्र उतारना चाहता है, उस वस्तु का चित्र शीशे (Lens) के माध्यम से कैमरे का बटन दबाकर रील में उतार लेता है। और जिस वस्तु का चित्र उतारना नहीं

चाहता, उसका चित्र नहीं उतारता है। ठीक इसी प्रकार से जीवात्मा जिस वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना चाहता है उस वस्तु का ज्ञान मन में, शरीर तथा इन्द्रियों के माध्यम से संग्रहीत कर लेता है। इस दृष्टान्त में शरीर कैमरे के समान है, फोटोग्राफर चेतन जीवात्मा है, मन रील है, जिस पर चित्र उतरते हैं, तथा इन्द्रियां शीशा (Lens) के समान हैं। इसी प्रकार से जैसे स्कूटर, कार, पंखा, मशीन आदि जड़ यंत्र बिना चेतन मनुष्य के चलाये अपने आप नहीं चलते हैं न रुकते हैं, ठीक वैसे ही बिना जीवात्मा की इच्छा तथा प्रेरणा के जड़ मन किसी भी विषय की ओर न अपने आप जाता है, न उसका विचार करता है।

अज्ञान के कारण ही, चेतन जीवात्मा स्वयं को मन का चालक न मानकर, मन को ही विषयों का उठाने वाला (उनका विचार करने वाला) मान लेता है। जब जीवात्मा को अपनी चेतनता और कर्तापन का तथा मन की जड़ता व साधनपन का ज्ञान हो जाता है, तब वह मन को अपने अधिकार में रखकर इसे अपनी इच्छा के अनुसार चलाता है। विद्वान् योगी व्यक्ति का ज्ञान ठीक होने के कारण वह अपने मन को अधिकारपूर्वक अपनी इच्छा अनुसार, ठीक वैसे ही चलाता है जैसे लौकिक व्यक्ति अपनी इच्छा अनुसार अधिकारपूर्वक स्कूटर को चलाता है।

जैसे कोई नया स्कूटर चलाने वाला यह कहे कि 'मेरा स्कूटर तो बहुत तेज चलता है, मैं इसे रोकना चाहता हूँ, पर यह तो रुकता ही नहीं है, मैं बायें चलाना चाहता हूँ किन्तु यह दायें जाता है, मैं इसे सड़क पर चलाना चाहता हूँ, पर यह तो सड़क से नीचे चला जाता है' ऐसी स्थिति में हम यही कहेंगे कि इस व्यक्ति को स्कूटर चलाना नहीं आता, और इसको अभ्यास भी नहीं है। यहाँ विचारने की बात यह है कि क्या स्कूटर अपने

आप चलता या रुकता है ? अपने आप दायें या बायें जाता है? नहीं, यह तो चलाने वाले की ही कमी है। ठीक ऐसे ही मन के विषय में भी समझना चाहिए की जड़ मन अपने किसी विषय की ओर नहीं जाता, जैसे स्कूटर अपने आप सड़क से नीचे नहीं जाता।

योगाभ्यासी को चाहिये कि उपासना काल में आसन पर बैठते ही मन में यह निश्चय करे कि **"मेरा मन जड़ है, इसको चलाने वाला मैं चेतन जीवात्मा हूँ। मेरी इच्छा तथा प्रयत्न के बिना यह जड़ मन किसी भी विषय को नहीं उठाता। इस समय मैं इसे अपने अधिकार में रखकर ईश्वर के चिंतन में ही लगाऊंगा"** अन्य सांसारिक विषयों में नहीं लगाऊंगा ऐसा निश्चय करने से मन के नियंत्रण में सहायता मिलती है। परन्तु ऐसा संकल्प करने के पश्चात् भी ध्यान के समय योगाभ्यासी असावधानी व अज्ञान से मन को अन्य विषय की ओर लगा देवे तो तत्काल वहाँ से हटाकर, पुनः ईश्वर में लगा देना चाहिए। प्रारंभिक काल में योगाभ्यासी को अन्य विषयों में लगाये हुए मन को प्रयत्न पूर्वक हटाकर बार-बार ईश्वर में लगाना पड़ता है। कालान्तर में जब मन विषयक ज्ञान तथा अभ्यास अच्छा हो जाता है तो व्यक्ति का मन के ऊपर पूर्ण नियंत्रण हो जाता है और वह जिस विषय से मन को हटाना चाहे, सरलता से हटा सकता है और जिस विषय पर लगाना चाहे लगा सकता है।

• • •